इकाई ४.२
अज्ञेय

अनुक्रम

४.२.१ उद्देश्य
४.२.२. प्रस्तावना
४.२.३. विषय – विवरण –
४.२.३.१ १) कितनी शांति! कितनी शांति
४.२.३.२ २) सागर किनारे
४.२.३.३ ३) कलगी बाजरे की
४.२.३.४ प्रयोगवादी काव्य की विशेषाताएँ
४.२.३.५ अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता तथा काव्य भाषा
४.२.४ शब्दार्थ – टिप्पणी
४.२.५ सारांश
४.२.६ स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न
४.२.७ स्वाध्याय – क्षेत्रीय कार्य
४.२.८ संदर्भ – अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

४.२.१ उद्देश्य :–

- प्रयोगवादी काव्य की प्रवृत्तियों से परिचित होंगे।
- प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के योगदान को समझेंगे।

४.२.२ प्रस्तावना :–

अज्ञेय प्रयोगवादी परंपरा के प्रवर्तक कवि हैं। उनका सच्चा नाम हैं। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन। अज्ञेय नाम से वे प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म सन १९११ कुशीनगर जिला देवरिया उत्तरप्रदेश में हुआ और मृत्यु सन् १९८७ में हुई। वे पंजाबी ब्राह्मण, सारस्वत गोत्रीय थे। युरोप, जापान, फिलीपाईन, रूमानिया, मंगोलिया रूस आदि की विदेश यात्रा इनका साहित्य समृद्ध एवं संपन्न हैं। वे कवि, उपन्यासकार, निबंधकार, पत्र-पत्रिकाओं के संपादक, अमेरिका के कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, भारतीय साहित्य के प्रतिनिधी लेखक, अंग्रेजी कवि हैं। इन्हें आंगन के पारद्वार पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार, कितनी नावों में कितनी बार पर ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य वाचस्पति, डी.लिट्, भारत-भारती उपाधियाँ मिली हैं।

इनके काव्यसंग्रह हैं – भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरीघास पर क्षणभर, बावरा अहेरी, इंद्रधनु रौंदे हुए ये, सुनहले शैवाल, पहले मैं सन्नाटा बुनता हुं, महावृक्षों के नीचे आदि। कहानी संग्रह – उपन्यास हैं

Scanned by CamScanner

– विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, जयदोला, शरणार्थी, ये तेरे प्रतिरूप, अमरवल्लरी, शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने-अपने अजनबी, निबंध संग्रह हैं – त्रिशंकु, आत्मनेपद, सबरंग आदि अनुवाद हैं – श्रीकांत अनुवाद भरतचंद्र का उपन्यास, त्यागपत्र – जैनेंद्र के उपन्यास का अंग्रजी में अनुवाद; तारसप्तक एक, दो, तीन भाग; नये एकांकी पुष्करिणी, आधुनिक हिंदी साहित्यादि, हिंदुस्तान, कादंबिनी, जनसत्ता, दिनमान, सारिका, नवभारत टाइम्स, साप्ताहिक हिंदुस्तान, हिंदुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया आदि पत्र-पत्रिकाओं में सहभाग। विविध प्रकार के लेखन साहित्य के द्वारा अज्ञेय ने विविध विषयों और समस्याओं को अभिव्यक्त किया हैं।

४.२.३ विषय – विवरण

अज्ञेय हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद के प्रसिध्द कवि एवं नायक रहे हैं। सन् १९४३ में अज्ञेय द्वारा संपादिक 'तारकप्तक' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। अज्ञेय के प्रयोगवाद ने हिंदी को एक नया मोड दिया क्योंकि इसमें उन्होंने नए – नए प्रयोग किए हैं। व्यक्तिवादी चेतना के ये प्रयोग उनके द्वारा ही सिद्ध हुए हैं। वे मैथिलीशरण गुप्त को अपने गुरू मानते हैं उनके भग्नदूत, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, महावृक्ष के नीचे आदि कृतियों में निराशा, क्षणवादी भावना एकांत आत्मबोध स्पष्ट है। इत्यलम्, हरी घाझ पर क्षणभर की कविताओं में स्नेह से प्रकृति तक का प्रभाव पंत के समान दिखाई देता है। प्रतीक बिंब, व्यंग आदि उनकी कविताओं में उभरकर आए हैं। उनकी सागर किनारे, कलगी बाजरे की आदि कविताओं में उनके काव्य की शैलीगत नवीनता स्पष्ट हैं।

४.२.३.१ कितनी शांति ! कितनी शांति!

कितनी शांति! कितनी शांति!
समाहित क्यों नहीं होती यहाँ भी मेरे हृदय की क्रांति?
क्यों नहीं अंतर-गुहा का अश्रृंखल दुर्वाध्य वासी,
अस्थिर यायावर अचिर में चिर-प्रवासी
नहीं रूकता, चाहकर-स्वीकार कर- विश्रांति?
(मारकर भी, सभी ईप्सा, सभी कांक्षा, जगत की उपलब्धियाँ सब हैं लुभानी भ्रांति!)
तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद –
सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद –
बिना पूछे, सिध्द कब ? इस कष्ट से होगा कहा साक्षात्?
कौनसी वह प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न, सूनी शिशिर भीगी रात?
चला हूँ मैं, मुझे संबल रहा केवल बोध-पग-पग आ रहा हूँ पास,
रहा आतप-सा यही विश्वास
स्नेह के मृदु घाम से गतिमान रखता निविड मेरे साँस और उसाँस।
आह संख्यातीत रूपों में तुम्हें मैंने किया है याद!
किंतु सहसा हरहशते ज्वार-सा बढ़ एक हाहाकार
प्राण को झकझोर कर दुर्वार,
लील लेता रहा है मेरे अकिंचन कर्म-श्रम-व्यापार!

Scanned by CamScanner

ऐसे कहाँ है अस्तित्व की इस जीर्ण चादर के इकहरी बार के ये तार!

गूंजनी ही रही है दुर्दांत एक प्रकार :
कहाँ है वह लक्ष्य श्रम का - विजय की-तुम्हारा
प्रतिश्रुत वह प्यार!
हरहराते ज्वार-सा बढ़ सदा आया एक हाहाकार
अहं अंतर्गुहावासी! स्वराति! क्या मैं चाहिनता
कोई न दुजी राह?
जानता क्या नहीं निन में बध्द होकर है नहीं निर्वाह?
क्षुद्र नलकी में समाता है कही बेथाह
मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज-दीप्त प्रवाह!
जानता हूँ! नहीं सकुचा हूँ, कभी समवाय को देने स्वयं का दान,
विश्व-जन की अर्चना में नहीं बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान!
कांति अणु की है सदा गुरू-पुंज का सम्मान!
बना हूँ कर्त्ता, इसी से कहूँ - मेरी चाह, मेरा दाह, मेरा खेद और उछाह
मुझ सरीखा अगिन लीकों से, मुझे यह सर्वदा है ध्यान,
नयी पक्की सुगम और प्रशस्त बनती है युगों की राह!
तुम? जिसे मैंने किया है याद, जिससे बंधी मेरी प्रीत -
कौन तुम अज्ञात -वय-कुल-शील मेरे मीत?
कर्म की बाधा नहीं तुम, तुम -नहीं प्रवृत्ति से उपराम -
तुम्हें धारे हृदय में, मैं खुले हाथों सदा दूंगा बाह्य को जो देय
नहीं गिरने तक कहूंगा, तनिक ठहरू क्योंकि मेरा चुक गया- पाथेय।
तुम! हृदय के भेद मेरे, अंतरंग सखा-सहेली हो,
खगों-से उड़ रहे जीवन-क्षणों के तुम पटु बहेली हो
नियम भूतों के सनातन, स्फुरण की लीला नवेली हो
किंतु जो भी हो, निजी तुम प्रश्न मेरे, प्रेय प्रत्यभिज्ञेय!
मेरा कर्म, मेरी दीप्ति, उद्भव-निधन, मेरी मुक्ति तुम
मेरी पहेली हो!
तुम जिसे मैंने किया है याद, जिससे बंधी मेरी प्रीत?
लभानी है भांति -------
कितनी शांति! कितनी शांति!

अज्ञेय अपने युग के जागरूक, संवेदनशील करकी रहे हैं। उनकी प्रथम कविता इ.स. १९२७ में प्रकाशित हुई और सन १९८७ तक उनकी काव्ययात्रा अबाध गति से चलती रही। वे इस लंबी यात्रा में राहों के अन्वेषी रहे हैं। उन्होंने तार-सप्तक से हिंदी कविता को नया संस्कार दिया। अनेक काव्य संग्रहों के निर्माण में उनके अनेक विषय प्रकट हुए। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने उनकी इस काव्ययात्रा को चार-सोपानों में विभक्त किया हैं - "पहला है विद्रोह और हताश का, दूसरा है अपने भीतर शक्ति संचय का, तीसरा है बिना किसी आशा के आत्मदान में सार्थकता पाने का और चौथा है मानवीय दायित्व-बोध के साथ-साथ भारतीय अस्मिता की पहचान का।"

Scanned by CamScanner

अज्ञेय विविध संवेदनाओं के कवि हैं। इसलिए उनकी कविताओं का कथ्य विविध अनुभवों से जुड़ा हुआ है। उनकी कविताओं में प्रेम, प्रकृति, रहस्य समाज, आत्मान्वेषण आदि भावों की एक साथ प्रस्तुति देख सकते हैं। 'प्रेम' अज्ञेय की कविता का मुख्य विषय है। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में स्वच्छंदतावादी कवियों का प्रभाव है किंतु बाद में जटिल मनःस्थिति को अभिव्यक्ति मिली है। अज्ञेय की कविता में आत्मन्वेषण के धरातल पर दो व्यक्तियों के बीच एक संवाद - सा दिखाई देता है। एक सामान्य व्यक्ति का और दूसरा उनके आदर्श कवि-व्यक्तित्व का जिसकी खोज उनके मन में निरंतर चलती रहती है। 'कितनी शांती!' कविता में आत्मसंवाद और कवि व्यक्तित्व की खोज द्रष्टव्य है -

तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद -
सदा प्राणों में कही सुनता रहा हूँ तुम्हारा संवाद -
बिना पूछे - सिध्द कब इस इष्ट से होगा कहा साक्षात्?

कौनसी वह प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न, सूनी

शिशिर भीगी रात?

इस कविता का आशय इसी बात पर आधारित है। कवि सोचते है कि इतनी शांति! कितनी शांति है। इसमें मेरे दिल में निर्माण होनेवाली क्रांति यहाँ क्यों नहीं मिलती है, एकत्र नहीं हो जाती। अंतर तम का मुक्त, बंधन रहीत अस्थिर, यायावर, शीघ्रता का चिर-प्रवासी चाहकर भी नहीं रूकता, आराम नहीं करता। जगत की सभी उपलब्धियाँ आकर्षणीय हैं, भ्रांति पैदा करनेवाली हैं। सभी इच्छा-आकांक्षाओं को दबा देने पर भी वे आकर्षित ही होती हैं।

मैंने तुम्हें अनेक बार अनेक रूपों में याद किया। मन ही मन तुम्हारे संवाद भी सुनता रहा। पता नहीं बिछा पूछो कवा इष्ट साध्य होगा, वह कौनसी प्रात होगी कि उसमें यह आर्द्रता-आस्था भाव खिल उठेगा क्योंकि शिशिर की भीगी रात सूनी है। मैं तो निकल जाना चाहता हूँ किंतु केवल यह आत्मबोध संबल रहा है कि धीरे-धीरे नजदीक आ रहा है। प्रकाश सा विश्वास, स्नेह के मृदु पसीने से मेरे घने जंगल में श्वास-प्रश्वास गतिमान रखता है। कितनी बार और कितने रूपों में तुम्हें याद किया है। किंतु अचानक बैचेनी- परेशानी का ज्वार-सा बढ़ जाने से हाहाकार हो जाता है।

प्राणों को झकझोर कर मेरे दीन कर्म-श्रम-व्यापारों को निगल लेता हूँ और अनुभूति के संचित-कनक भार को इकट्ठे झेलता हूँ। ऐसा कहाँ अस्तित्व है कि जो इस जीर्ण चादर के इकहरी बाट का हिस्सा बने। एक तरह से यह प्रबल स्वर गुंजता रहा। 'श्रम का वह लक्ष्य कहाँ है? जीवन की जीत- तुम्हारी वह प्यार की प्रतिज्ञा।' जब यह याद आता है तब मन ज्वार-सा उभर आता है और पीड़ा से रोना आजाता है। अंतर्गहावासी अहं, स्वरति! मैं कोई दूसरी राह नहीं पहचानता! मैं यह भी जानता हूँ कि केवल स्वयं में बध्द होकर निर्वाह नहीं होता। सोचों कि क्षुद्र नलकी-में अथाह कहीं समाता है क्या! मैं यह जानता हूँ कि जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना ही मुक्त-तेज दीप्त प्रवाह है। मैं स्वयं का दान करने, मेल करने में संकोच नहीं करता। विश्व था समाष्टि के लिए इस व्यष्टि का अभिमान बाधक नहीं था। हमेशा गुरू-पुंज के सम्मान में ही अणु(लघु-व्यक्ति) की कांति -श्रेष्टता रहती है।

कर्ता बनने के कारण ही मैं मेरी, चाह, दाह, खेद, आनंद व्यक्त करता हूँ। मेरे समान अग्नि-लोकों के कारण युगों की नई, पक्की, सरल और प्रशस्त राह बनती है, इस बात का मुझे हमेशा ही ध्यान रहता है। तुम? जिसे मैंने याद किया, जिससे मेरी प्रीत बंधी है, तुम कौन हो? तुम्हारी आयु-कुल-शील मेरे लिए अज्ञात है? तुम कर्म की बाधा नहीं, तुम प्रवृत्ति से विरक्ति भी नहीं! क्या तुम्हारे हित के लिए मेरा संघर्ष

Scanned by CamScanner

रूका है, मेरा कर्म रूका है। तुम्हें दिल में धारण करने से कुछ भी तो रूका नहीं। मैं हमेशा ही खुले हाथों से बाह्य को जो देना है वह दूँगा, गिरने तक नहीं कहूंगा "थोडासा रूको क्योंकि मेरा मार्ग चूक गया है।"

तुम मेरे दिल के भेद हो, अंतरंग सखा-सहेली हो। पंछी के समान उड़ने वाले मेरे जीवन-क्षणों के तुम प्रवीण शिकारी हो। अतीत के सनातन नियम, स्फूर्ति नई प्रेरणा-लीला हो। किंतु तुम जो भी हो, तुम मेरे ही प्रश्न हो, प्यार-प्रेम को पहचानने वाले हो। तुम मेरा कर्म, मेरी दीप्ति, मेरा उद्‌भव-निधन मेरी मुक्ति, मेरी पहेली भी तुम हो, जिसे मैंने याद किया है, जिससे मेरी प्रीत बंधी है, कितनी लुभावनी है यह भ्रांति! कितनी शांति, कितनी शांति। अज्ञेय ने व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्व दिया है- वे कहते हैं- मैंने कविता का उपयोग करना नहीं चाहा, क्योंकि मैंने नहीं माना कि मेरे उपयोग करना चाहने से वह उपयोगी हो सकती है। मैं मानता हूँ जब वह उपयोगी होती है, जब मैं स्वयं उपयोगी हूँ, उसमें जीवन की पूर्णता तब है जब मैंने पूर्ण जीवन के प्रति स्वयं को समर्पित किया है। दुहाई देने से ही कविता नहीं लिखी जाती। कवि अपने अस्तित्व के प्रति सजग है व्यष्टि- समष्टि का द्वंद्व सक्रिय है।

अज्ञेय अपनी प्रणयानुभूति के चरम क्षणों में रहकर भी न रहने की कल्पना करते हैं। अपने भीतर के सूने सन्नाटे की गूँज को सुनते हैं। और क्षणभर के लिए अपने और अपनी प्रियतमा को लय हो जाने की स्थिती का अनुभव करते हैं। यह आत्मलय, आत्मविसर्जन के प्रणय को कहीं न कहीं मुक्ति का सीमाहीन खुलेपन का एहसास कराता है।

४.२.३.२ सागर किनारे

तनिक ठहरू! चांद उग आये,
तभी जाऊंगा। वहा नीचे
कसमसाते रूद्ध सागर के किनारे।
चांद उग आये।
न उसकी
बुझी फीकी चांदनी में दिखे शायद
वे दहकते लाल गुच्छ बुरूँस के जो
तुम हो।
न शायद चेत हो, मैं नही हूँ वह डगर
गीली दूब से मेदुर
मोड़ पर जिसके नदी का कूल है, जल है,
गुच्छ लाल बुरूँस के उत्फुल्ल।
न आये याद, मैं हूँ
किसी बीते साल के सीले कलेंडर की
एक बस तारीख, जो हर साल आती है।
एक बस तारीख - अंकों में लिखी ही जो न जावे।
जिसे केवल चंद्रमा का चिहन ही बस करे सूचित-
बंक-आधा-शून्य,
उलटा बंक-काला वृत्त,
यथः पूनो-तीन-तेरस-सप्तमी,

Scanned by CamScanner

अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार-न्हायी हुई
हटकीं कली चंपे की, वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय, उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुल्लमा छूट जाता है।
मगर क्या तुम, नहीं पहचान पाओगी:
तुम्हारे रूप के- तुम हो, निकट हो, इसी जादू के-
निजी किस सहज, गहरे बोध से, किस प्यार से मैं कहा रहा हूँ-
अगर मैं यह कहूँ- बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की
आज हम शहरातियों को,
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का-ऐश्वर्य का- औदार्य का-
कहीं सच्चा, कहीं प्यारा, एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सून गगन की पीठिका पर दोलती कलगी
अकेली बाजर की
और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है-
और मैं एकांत होता हूँ समर्पित
शब्द जादू हैं -
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है?

अज्ञेय की यह बहुचर्चित कविता है, जिसमें उन्होंने नष्ट बिंब और प्रतीक नए रचनाशिल्प तथा नयी शब्दरचना को अपनाया है। इसका प्रभाव उनकी पुरानी कविताओं से बिलकुल भिन्न है। उनकी दृष्टि में परंपरागत प्रतीक बार-बार प्रयुक्त होते रहने के कारण मैले अर्थात् अनुपयुक्त हो गए हैं। अतः 'कलगी बाजरे की' कविता में वे अपनी प्रिया के लिए नष्ट प्रतीक का प्रयोग करते हैं। इस कविता में परिवर्तित प्राकृतिक सौंदर्य बोध दृष्टिगत होता है।

तुम हरी बिछली अर्थात् बिछाई हुई घास के समान प्रसन्न हो। बाजरे की दुबली-पतली फुर्तीली झूलती कलगी या तुरा हो। अगर मैं तुम्हें. ललाती संध्या में आसमान की अकेली तारिका या नक्षत्र कहता। किंतु अब नहीं कहता। या शरद ऋतु की प्रभात में ओस से न्हायी हुई कुमुद, ताजगी भरी चम्पे की कली आदि तो नहीं कहता, तुम्हें लगता कि मेरा दिल छीछला है या रिक्त-सूना है या तो फिर मेरा प्यार ही मैला अर्थात् अनुपयुक्त है।

Scanned by CamScanner

सिर्फ, सिर्फ यही बात है कि यह परंपरागत उपमान अब मैले या अनुपयुक्त हो गए हैं, अर्थहीन हो गए हैं। देवता भी इन सब प्रतीकों छोडकर चले गए हैं। सब प्रतीक अर्थहीन बन चुके हैं। जैसे बर्तन को बार-बार या अधिक घिसने से उसका मुलम्मा घट जाता है, कलई निकल जाती है। तो क्या तुम अपने रूप को पहचान न पाओगी तुम तो तुम्हारे रूप के ही निकट हो, यही इसका जादू है। अपने ही सहज, गहरे बोझ से, किस प्यार से मैं यह कह रहा हूँ। हाँ अगर मैं यह कहूँ कि तुम बिछली घास हो, हरी-भरी, खुशी से हवा में दोलती दुबली-पतली, फुर्तीली बाजरे की कलगी हो! तो क्या यह अच्छा नहीं हैं!

आज हम शहरों में रहनेवालों को पाले हुए मालंच पर सँवरी जुटी के फूल से भले ही लगती हो। वह अपने प्रेम के विषय में नगरवासियों से कुछ सुनना नहीं चाहता। किंतु सृष्टि का विस्तार, ऐश्वर्य और औदार्य का, कहीं सच्चा कहीं प्यारा एक प्रतीक बिछली घास है। प्राकृतिक उपमान विस्तृत, संपन्न हैं। बड़ी उदारता से प्रकृति इन उपमानों को देती हैं। वे सच्चे और प्यारे होते हैं। कवि कहते हैं कि सच्चा और प्यारा प्रतीक बिछली घास है या शरद ऋतु की संध्या के सूने-खाली आसमान के आसन या पीठिका पर झूलती अकेली बाजरे की कलगी सच कहूँ- जब जब इन्हें मैं देखता हुँ। तो यह खुला उजड़ा हुआ संसार केंद्रीतभूत-सधन होकर, संकुचित हो जाता है और मैं अकेला हो जाता हूँ 'समर्पित' शब्द जादू ही हैं। तो क्या यह प्यार में किया गया समर्पण कुछ भी नहीं।

अज्ञेय ने प्रकृति के विराट रूप का चित्रण करते हुए सौंदर्यानुभूति, अनुभवों का खुलापन, अटूट प्रेम, समर्पण आदि का दर्शन कराया है। उनकी दृष्टि से यह आत्मानुभूति और मुक्ति का क्षण है।

४.२.३.४ प्रयोगवादी काव्य की विशेषाताएँ

आधुनिक हिंदी काव्य की एक नवीनतम शैली, प्रयोगवाद है जिसमें कवियों ने अपनी अनुभूति की व्यंजना के लिए नवीन प्रयोगों को अपनाया हैं। सामान्यतः प्रत्येक युग में अभिव्यंजना शैली और विषयों में नए-नए प्रयोग होते रहे हैं किंतु उस युग के प्रत्येक कवि को प्रयोगवादी नहीं कहते। 'प्रयोग' शब्द एक विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति के अर्थ में उपयोग में लाया गया है। छयावादी की भाव-विभारता और प्रगतिवादी बौध्दिकता की प्रतिक्रिया के रूप में प्रयोगवाद की निर्मिती हुई है। प्रयोगवाद के श्रेष्ट आलोचक लक्ष्मीकांत वर्मा के अनुसार "प्रयोगवाद छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया मात्र है।" इस प्रयोगवाद को अभिव्यक्ति के लिए नवीन माध्यम, नवीन विषय चुनने पड़े जो पहले अज्ञात थे।

हिंदी के काव्य-क्षेत्र में इस साहित्यिक प्रवृत्ति का जन्म 'प्रथम तारसप्तक' के प्रकाशन अर्थात् सन १९४३ इ. से माना लिया गया है। अज्ञेय को प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक स्वीकार किया गया है। सत्य की खोज करना, काव्य का साधारणीकरण करना, परंपरा को ज्यों का त्यों स्वीकार न करके नए प्रयोगों को आवश्यक माना, भाषा में संस्कार आदि बातों को इसमें महत्त्व दिया गया। अज्ञेय स्वयं 'प्रयोगवाद' नामकरण में अरूचि दिखाते हुए कहते हैं कि "प्रयोगवाद यह नाम नए कवियों के लिए पर्याप्त नहीं है--- किसी मंजिल पर पहुँचना नहीं है, वे अभी राही हैं, राही नहीं बल्कि यों कहिए राहों के अन्वेषी हैं।" अज्ञेय के संपादन में तारप्तक पहला प्रकाशित हुआ। उसमें अज्ञेय, मुक्तिबोध, माथुर, नेमिचंद जैन, भारतभूषण, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा इन सात कवियों का समावेश था। उसके बाद तारसप्तक दूसरा, तीसरा, चौथा प्रकाशित किया गया। तीसरे तारसप्तक में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का समावेश किया गया हैं। सन १९४३ से १९५३ तक नवीनतम प्रयोग की यह धारा प्रवाहित होती रही। उसकी निम्न विशेषाताएँ हैं---

Scanned by CamScanner

अहंनिष्ठ व्यक्तिवादी दृष्टिकोण- व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के कारण कवि सामाजिक जीवन के साथ गठबंधन नहीं कर सके। उदा. नदी के द्वीप, यह दीप अकेला जिनमें अहंकार की भावना स्पष्ट है -

"यह दीप अकेला स्नेह भरा, है गर्व भरा मदमाता, पर

इसको भी पंक्ति दे दो।"

"हम नदी के द्वीप हैं, हम यह नहीं कहते कि

यह स्त्रोतास्विनी बह जाये।"

दूषित भावनाओं का चित्रण -

इन कवियों ने अश्लील, असभ्य विषयों को व्यक्त करने में ही अपना आत्मगौरव समझा हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण के प्रभाव से ही इन कवितों ने नग्न यथार्थ की सृष्टि की हैं। कवि अज्ञेय कहते हैं कि- आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति सेक्स संबंधी भावनाओं से आक्रांत है। उसका मस्तिष्का दमन की गई सेक्स की भावनाओं से भरा हुआ है। इसीलिए कविता में इसप्रकार की बात आई है। प्रयोगवादी कवि फ्रायड के समान ही कामवासना को ही जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति मान लेते हैं।

निराशावादी :-

अतीत की प्रेरणा और भविष्य की आशा से प्रयोगवादी विरक्त हैं। वे निराश, हताश बन गए हैं। वे वर्तमान जीवन में ही सबकुछ प्राप्त कर लेना चाहते हैं- उदा. - छूले इसी क्षण, क्योंकि कल वे नहीं रहेंगे, क्योंकि कल हम भी नहीं रहेंगे।

अति बौद्धिकता :-

प्रयोगवादी काव्य में पांडित्य का अधिक्य रहा है। मास्तिष्क पर बल देकर वे काव्य लिखते हैं। अति बौध्दिकता के कारण पाठक भी परेशान हो जाते हैं। उदा. अज्ञेय की हरी घास पर क्षणभर कविता -

"चलो उठे अब। अब तक हम थे बंधु।
सैर को आये। और रहे बैठे तो लोग कहेंगे
धूंधले में दुब के दो प्रेमी बैठे हैं
वह हम हों भी तो यह हरी घास ही जाने।"

अति बौद्धिकता के कारण काव्य की रसमयता कम होकर शुष्कता आ जाती है।

सौंदर्य भावना का विस्तार :-

सौंदर्य भावना एक शाश्वत प्रवृत्ति हैं। युगानुसार वह प्रतीकों एवं भाषा शैली के माध्यम से व्यक्त होती रही। प्रगतिवाद में सौंदर्यबोध के मापदंड बदले और निम्नस्तर के मानव जगत् में सौंदर्य बोध किया गया। तो प्रयोगवादी कवियों ने संसार की सभी चीजों में सुंदरता देखी। उनकी दृष्टि से संसार की कोई भी चीज उपेक्षणीय नहीं होती। तुच्छ, कुरूप वस्तु में भी सौंदर्य के दर्शन करता है और कविता के लिए अपना विषय बनाता है। चूड़ी का टुकडा, पकौडी, फटी ओढ़नी, छिपकली, मकड़ी आदि विषय बनते हैं।

नवीन उपमान :-

परंपरागत प्रतीकों और उपमानों का त्याग प्रयोगवादी कवियों ने इसलिए किया हैं कि उनका आकर्षण कम हो गया है। यांत्रिक युग की जटिल संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो गए है जैसे बर्तन अधिक घिसने से उनका मुल्लमा छूट जाता है, प्रतीकों के अधिक प्रयोग करने से उनकी अर्थवत्ता समाप्त हो जाती है -

Scanned by CamScanner

उदा. "ये उपमान मैले हो गए हैं। देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूचा।
कभी बासन अधिक घिसने से मुल्लामा छूट जाता है।"
"प्यार का बल्ब फ्यूज हो गया।
कलगी बाजरे की, रूप छरहरी.....।"
"बासी ककड़ी सी अलसाई
सड़ा हुआ नारियल-सा खाली मास्तिष्क.....।" आदि।

यथार्थवादकी प्रतिष्ठा :-

प्रयोगवाद में कल्पना के स्थान पर यथार्थवाद की प्रधानता रही है। छायावादी काव्य में कल्पना तो प्रगतिवाद में सामाजिक यथार्थ की प्रधानता रही है किंतु प्रयोगवादी काव्य में अतियथार्थवादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इसलिए प्रयोगवादी कवि अति क्षुद्र, तुच्छ वस्तु का यथार्थ की दृष्टि से वर्णन करके उसमें नवीनता, नए-नए प्रयोग करके मौलिकता दिखाते हैं। अपने काव्य के द्वारा प्रयोगवादी सत्य के दर्शन कराता है।

काव्य विषयक कलात्मक दृष्टिकोण :-

प्रयोगवादी कवि काव्यकला को जीवन के लिए न मानकर केवल कला के लिए ही मानते हैं। इसलिए इन कवियों का लक्ष्य केवल विलक्षणता, आश्चर्य, दुरूहता से अपनी नवीनता प्रगट करना ही होता हैं।

भाषा- शैली :-

प्रयोगवादी कवियों ने अनेक स्थानों पर भाषा के अच्छे प्रयोग किए हैं किंतु उनके विलक्षण प्रयोग के कारण खड़ीबोली के व्याकरण के रूप की अवहेलना की गई हैं। दर्शन, मनोविज्ञान, भूगोल, बाजारू बोली के शब्द प्रयोग से भाषा बोझिल, जटिल, असंदिग्ध बन गई हैं। किंतु यह भी देखना आवश्यक हैं कि प्रयोगवाद बाद्धिकता का विशेष आग्रही है, वह प्रत्येक वस्तु को प्रौढ दृष्टि से देखता है। इसमें नए सत्यों या नई यथार्थताओं का बोध भी हैं, रागात्मक संबंध भी है और उनको सहृदय पाठकों तक पहुचाने की शक्ति भी हैं। अज्ञेय ने न केवल प्रयोगवादी काव्यधारा को प्रवाहित किया है किंतु तारसप्तकों के माध्यमसे अनेक कवियों को इस धारा में समाविष्ट कर लिया हैं।

४.२.३.५ अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता तथा काव्यभाषा :-

इ. स. १९४३ से सन १९४५ तक सेना में नोकरी करनेवाले अज्ञेय कवि होने के साथ-साथ निबंधकार, उपन्यासकार, आलोचक, पत्रकार, कथाकार भी थे। उन्होंने चार सप्तकोंका संपादन कर हिंदी काव्य जगत् में अपना अलग अस्तित्व प्रस्थापित किया। अभिव्यक्ति तथा विषयवस्तु दोनों ही स्तरों पर उन्होंने हिंदी काव्य में नए प्रयोग किए और उसे नयी भाव-भांग मा से संपन्न किया। वे स्वयं प्रयोग की प्रक्रिया से गुजरे है। उन्होंने भाव, भाषा, अलंकार, उक्ति आदि के क्षेत्र में प्रयोग किए और नई काव्य-चेतना का संचार किया। वे वर्तमान के प्रति सजग थे और अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध थे। युग के जीवन की कुंठा, विघटन, नग्नता और खोखलापन इनके प्रयोगधर्मी नव-आयाम हैं। उसीप्रकार प्रयोगवाद की प्रबल अभिव्यक्ति क्षणबोध की अभिव्यक्ति में होती हूँ। अज्ञेय ने भी क्षण समस्त अनुभूतियों, संवेदनाओं, विचारों और भावनाओं को स्वर दिया है।

उदा. "आ के इस विविक्त, अद्वितीय क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें, आत्मसात् कर लें.....।"

Scanned by CamScanner

अज्ञेय की प्रयोगधर्मिता का एक महत्वपूर्ण अन्य आयाम भी है आत्मान्वेषण। इनके काव्य की यह महत्वपूर्ण और गहरी प्रवृत्ति रहीं है। आत्मान्वेषण को उन्होंने आत्मबोध और आत्मविश्लेषण से जोड़ दिया है। वे कहते हैं -

"हम नदी के पुत्र हैं
बैठे हैं नदी की क्रोड में.....।"

उनकी इस काव्य-संवेदना का आधार अस्तित्ववादी दर्शन है। कवि व्यक्तिनिष्ट अहं और निजी अस्मिता के प्रति आग्रह करते हैं। वे अपना अस्तित्व मिटाना नहीं चाहते। किंतु साथ रहकर ही अस्तित्व बनाए रखना चाहते हैं अर्थात् अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं।

काव्यभाषा के संदर्भ में स्वयंअज्ञेय ने लिखा हैं - "शब्दों के निरंतर प्रयोग से वे घिस जाते हैं। हर युग के नये जीवन - सत्य को पुरानी भाषा से व्यक्त नहीं किया जा सकता। व्यंजना के पुराने साधन पर्याप्त नहीं हैं। कवि नयी सूक्ति, नयी उपमाएँ, नया चमत्कार भाषा में लाता है।" काव्य की आवश्यकता के अनुसार अज्ञेय ने अपनी खड़ी बोली में परिवर्द्धन-परिवर्तन भी किए हैं। इनकी भाषा कहीं छायावादी, कहीं रहस्यवादी, कहीं वर्णनात्मक तो कहीं लोकभाषा के निकट हैं। उनकी भाषां में यथास्थान तद्भव, तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ हैं-

उदा. - हृदय, क्रांति, सिद्ध, मृदु, प्रतिश्रुत ज्वार, क्षुद्र, मुक्त, दीप्ति, संसृति, रूद्ध, उत्फुल्ल, चिह्न, चंद्रमा, सृष्टि, ऐश्वर्या, औदार्य आदि. देशज शब्दों प्रयोग से भाषा लोकभाषा के निकट पहुचती है-

उदा. - छोरिया, गोरियाँ, छरहरी बासन आदि

दोलती, ललाती, लुभानी जैसी विशेष क्रियाओं को प्रयोग किया हैं। रेल, मोटर, कॅलेंडर आदि अंग्रजी, तारीख, मुलम्मा, साल, नसीला आदि अरबी-फारसी शब्द प्रयोग मिलते हैं।

कलगी बाजरे की, ललती सांझ, नीहार-न्हायी कुई, टटकी कली चंपे की, मैला प्यार, बिछली घास, सँवरी जुही के फूल से, सूने गगन की पीठिका सीले कलेंडर की, फीका आलोक, कसमसाता रूद्ध सागर आदि विशेषणों का प्रयोग अज्ञेय अपने ढंग से करते हैं। शब्दों की तोड़-मरोड़ से उन्हें कुछ फर्क नहीं पड़ता। उनका ध्यान तो केवल इतना होता है कि उनके शब्द, उनकी भाषा एवं उनका शिल्प उनके भावों का पूर्ण संवाहक बनना चाहिए।

अज्ञेय की भाषा के विभिन्न रूपों में, प्रयोगधर्मिता के कारण भाव एवं लघुदृश्य साकार हो उठे हैं। उसीप्रकार प्रतीक-रचना में भी नवीनता लाने का प्रयत्न किया हैं-

उदा. किसी बीते साल के सीले कलेंडर की
" एक बस तारीख, जो हर साल आती है।
कहीं सच्चा कहीं प्यारा
एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की सांस के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली बाजरे की।"

अज्ञेय की काव्य भाषा में प्रतीकों के साथ-साथ बिंबों का भी प्रयोग असाध्य वीणा में मिलता है। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा की समृद्धि में निश्चित ही वृद्धि हुई हैं- उदा. खिल उठना, राह प्रशस्त बनाना, खुले हाथों से देना, सूचित करना, सोख लेना, सिमट जाना आदि।

Scanned by CamScanner